ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(3): 135-140
www.allresearchjournal.com
Received: 23-01-2017
Accepted: 25-02-2017

राजेश कुमार
शोधार्थी (पीएच.डी.)
इतिहास विभाग, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Correspondence
राजेश कुमार
शोधार्थी (पीएच.डी.)
इतिहास विभाग, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

डॉ. अंबेडकर के दृष्टिकोण में सामाजिक न्याय

राजेश कुमार

प्रस्तावना

"सामाजिक न्याय" शब्द का हमने सामान्य अर्थ के रूप में अध्ययन किया है। यहाँ इसी शब्द को डॉ. अंबेडकर के दृष्टिकोण से पुनः सिद्धान्त की अपेक्षा यथार्थ रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। क्योंकि उनके सम्पूर्ण विचारों में "सामाजिक न्याय" का मंथन निरंतर चलता रहता है परन्तु उन्होंने कहीं भी क्रमबद्ध रूप से इस पर ज्यादा कुछ नहीं कहा है। मुख्यतः समाज में व्याप्त अन्याय की समाप्ति के उपरांत जिस स्वच्छ वातावरण का विकास होता है वही "सामाजिक न्याय" है। सामाजिक अन्याय का जितना सामना व प्रतिकार डॉ. अंबेडकर ने किया, उतना शायद ही किसी अन्य चिन्तक ने किया हो। इसी विशेषता के कारण "सामाजिक न्याय" डॉ. अंबेडकर के नाम का पर्यायवाची बन चुका है।

डॉ. अंबेडकर ने अपने सम्पूर्ण जीवन में केवल "सामाजिक अन्याय" का ही सामना किया था। और इस "सामाजिक अन्याय" का उत्पीड़न इतना भयंकर था कि उन्हें इससे आभास हुआ कि "सामाजिक न्याय" व समानता व्यक्ति के जीवन के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है। हमें यह ध्यान रखना होगा कि "सामाजिक न्याय" शब्द का मुख्यतः प्रयोग उन्होंने अपने समुदाय अर्थात् सदियों से शोषित "अछूत लोगों" के लिए किया था तभी तो उन्होंने अपने समुदाय अर्थात् सदियों से शोषित "अछूत लोगों" के लिए किया था तभी तो उन्होंने जगह–जगह पर "मेरे", व "हमारे" समुदाय शब्द का प्रयोग किया। अतः डॉ. अंबेडकर की "सामाजिक न्याय" की प्राप्ति का संकल्प आरम्भ में केवल उनके समुदाय विशेष के लिए था। इसके लिए उन्होंने संविधान में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने की घोषणा सम्पूर्ण भारतीय जनता की तरफ से की थी। तथा समाज के सभी वर्गों को सामाजिक, आर्थिक न्याय विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, किसी भी धर्म में आस्था रखने व पूजा करने की स्वतन्त्रता, हर नागरिक को हर क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करने तथा सम्मान व बन्धुत्व की भावना से राष्ट्र की एकता अखण्डता सुनिश्चित करने का प्रावधान किया था। इससे ज्ञात होता है कि डॉ. अंबेडकर "सामाजिक न्याय" के प्रति कितने समर्पित थे।

सामाजिक असमानता या अन्याय का जो विवरण डॉ. अंबेडकर ने दिया है उसको समझे बिना "सामाजिक न्याय" अथवा "सामाजिक समानता" का अध्ययन अधूरा ही होगा क्योंकि अपने आपको सभ्य व सुशिक्षित कहने वाले हिन्दू समाज की जो आंतरिक स्थिति है उसका अध्ययन किए बिना "सामाजिक न्याय" के महत्त्व को समझ पाना कठिन है। इस संदर्भ में डॉ. अंबेडकर ने कहा कि देश के अन्दर एक ऐसा वर्ग भी है जो सदियों से असमानता की दर्दनाक उत्पीड़न को झेलता आ रहा है जो विदेशियों के साथ–साथ स्वदेशियों का भी गुलाम है [1], आदमियों की दुनिया में भी जिनके साथ पशुवत व्यवहार किया जाता है। सभी हिन्दू कुत्ते, बिल्लियों, गाय इत्यादि पालतू जानवरों को बड़े प्यार से स्पर्श करते हैं, चींटी को शक्कर अर्पित की जा सकती है इसमें कोई बुराई नहीं है। लेकिन अपने ही स्वधर्मी इन दलितों के स्पर्श से वे अपवित्र हो जाते हैं। [2]

सवर्ण लोग इनकी छाया व स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जाते थे। दलितों की वाणी तक कानों में पड़ना अशुभ था। दलित लोग किसी सामूहिक कुएँ से पानी नहीं पी सकते थे। मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित था और बच्चों को पाठशालाओं में प्रवेश नहीं मिलता था। सरकारी नौकरियों, प्रतिष्ठित व्यवसायों में उन्हें नहीं लिया जाता था। [3] इन लोगों का कार्य केवल रास्ते साफ करना, सवर्णों का मलमूत्र साफ करना, मरे हुए जानवरों की खाल निकालना, दास बन कर उनकी दासता को बनाए रखना था। इसके अतिरिक्त यह वर्ग अच्छा भोजन नहीं कर सकता था, अच्छी धातु के गहने नहीं पहन सकते थे। यह सब कुछ इनके लिए निषिद्ध था।

बात केवल यहीं तक सीमित नहीं थी दलित दूल्हे का घोड़े पर चढ़ना मना था।[4] चावल में घी डालना, जूते पहन कर गाँवों में घूमना इत्यादि सब कुछ तो निषिद्ध था।[5]

यदि कोई ऐसी हिमायत करता तो न केवल उसकी पिटाई होती थी बल्कि उसे हजार तरह की यातनाओं का शिकार होना पड़ता था। सवर्ण लोग, जिनके खेतों में ये लोग कार्य करते थे उन्हें भर पेट भोजन तक नहीं देते थे। पेट भरने के लिए वे मरे हुए जानवरों का माँस खाने को मजबूर थे।[6] इस तरह का था भारतीय समाज में असमानता का नंगा नाच? जिसकी तरफ इससे पहले आज तक किसी का भी ध्यान नहीं गया था।

भारत के सामाजिक इतिहास में डॉ. अंबेडकर पहले ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने युगों से पीड़ित शोषित दलितों की इन समस्याओं को "सामाजिक न्याय" के अन्तर्गत महसूस करते हुए इसे राष्ट्रीय समस्या बताया और इसके उत्थान के लिए आजीवन संघर्ष किया। [7] यह ठीक था कि देश का विदेशियों के शासन से स्वतंत्र होना जरूरी था लेकिन देश की स्वतंत्रता के साथ–साथ दलितों की सामाजिक स्वतंत्रता में भी डॉ. अंबेडकर की गहरी रुचि थी। उनका विचार था कि "स्वतंत्रता से पहले सामाजिक असमानता समाप्त होनी चाहिए ताकि स्वतंत्रता का लाभ बाद में दलितों को भी मिल सके। क्योंकि जब तक दलित लोग सामाजिक शोषण और अपमान के शिकार रहेंगे तब तक उनके लिए स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं होगा। वे तो कल भी गुलाम थे, आज भी गुलाम हैं और कल भी गुलाम रहेंगे। अतः उनके जीवन में बदलाव आना आवश्यक है।"[8]

अतः यह स्पष्ट है कि अंबेडकर ने अस्पृश्यता को देश की सर्वप्रमुख समस्या माना। क्योंकि इस अस्पृश्यता के कारण ही समाज का एक वर्ग सामाजिक धरा से अलग–थलग पड़ गया था जिससे राष्ट्र के विकास में उस बहुसंख्यक वर्ग की ऊर्जा का उचित उपयोग नहीं हो पा रहा था। डॉ. अंबेडकर किसी भी प्रकार के शोषण, उत्पीड़न अथवा एकाधिकार के कठोर विरोधी थे। उनका आग्रह था कि सबको न्याय मिले, किसी के साथ भेद–भाव न हो, सारा समाज परस्पर मैत्री भाव से रहे तथा सबकों स्वेच्छानुसार व्यापार करने की स्वतंत्रता हो। भारतीय संविधान की रचना के समय भी उन्होंने यही विचार रखा था। यह था उनके "सामाजिक न्याय" का एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण।

डॉ. अंबेडकर का मत था कि सामाजिक न्याय जब तक नहीं आ सकता है तब तक कि हम राजनैतिक समानता के साथ–साथ आर्थिक समानता प्राप्त नहीं कर लेते हैं। उनका मत था कि अछूत भूमिहीन मजदूरों की समस्या को राष्ट्रीय आर्थिक विकास के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। 15 अगस्त 1936 में लेबर पार्टी की स्थापना करते समय डॉ. अंबेडकर ने अपना परम ध्येय भूमिहीन मजदूरों, गरीब किसानों व श्रमिक वर्ग की समस्याओं का समाधान करके उनके लिए सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना था। तभी तो उन्होंने कहा था कि– "समानता का अर्थ है सभी को समान अवसर मिले और प्रतिभा को ही प्रोत्साहन दिया जाए। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हिन्दू समाज का गठन दो सिद्धांतों पर किया जाए समानता व जाति विहीनता।"[9]

डॉ. अंबेडकर दलित जाति में पैदा हुए थे और उन्होंने जातीय भेदभाव की भयानक यंत्राणाओं को अच्छी तरह महसूस किया था यही कारण था कि वे अछूतों के साथ घटित अन्याय की घटनाओं को आसानी से अनुभव कर सकते थे तभी तो वे कहते थे कि जहाँ उनके व्यक्तिगत हित और देश के हित के बीच टकराव होगा वहाँ वे देश के हित को प्राथमिकता देंगे, लेकिन जहाँ देश के हित और दलित वर्गों के हितों में टकराव होगा वहाँ वे दलित वर्गों के सामाजिक हितों को प्राथमिकता देंगे। इससे स्पष्ट होता है कि दलित वर्गों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वे कितने उत्सुक थे।

डॉ. अंबेडकर के इस विश्व व्यापी दृष्टिकोण से केवल भारतीयों या पिछड़े वर्गों को ही प्रसन्नता नहीं हुई बल्कि भारत के बाहर भी ऐसे लोगों को उनके प्रयत्नों ने संतुष्ट किया जिनकी दृष्टि में भारतीय संविधान मानवीय अधिकारों का एक नया घोषणा पत्र था। डॉ. अंबेडकर मानव के प्रति सद्भावना, प्रेम तथा सम्मान को प्रदर्शित करना ही महत्त्वपूर्ण समझते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति सम्मानपूर्वक जीवन यापन करे। तथा किसी को समाज में ऊँच नीच की दृष्टि से न देखा जाए। उनका मत था कि समाज में विभिन्न सामाजिक इकाईयाँ हो सकती है। विभिन्न धर्म, संप्रदाय व विचार के लोग इसमें रह सकते हैं लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि समाज में सामान्य नैतिक नियम हो, ताकि समानता के प्रति लोगों की आस्था बढ़े, जिससे सामाजिक न्याय का आदर्श सरल हो सके। तभी तो उन्होंने स्त्री–पुरुषों के लिए समान अधिकार प्रदान किए जाने की हिमायत की। धर्म, जाति, जन्म व रंग इत्यादि के आधार पर सभी भेद भावों को उन्होंने मिटाने का स्वयं भी प्रयास किया तथा दूसरों को भी इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया।

संसार में विशेष कर तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं, एक वो होते हैं जिन पर किसी प्रकार का अन्याय हुआ तो वे चुपचाप सह लेते हैं, अन्याय का प्रतिकार करने का साहस उनमें नहीं होता। उनकी समझ में सिर्फ यही रहता है कि अन्याय तो होता ही रहेगा क्योंकि यह तो प्रकृति का नियम है और यह सोचकर इस प्रकार के व्यक्ति खामोश रहते हैं। दूसरे वे व्यक्ति होते हैं जिन पर अन्याय होता है तो वे बौखला जाते हैं, बड़बड़ाते हैं, चिल्लाते हैं, और दूसरों को अपने साथ घटित घटनाओं के विषय में बताते हैं किन्तु करते कुछ नहीं। और तीसरे वे व्यक्ति होते हैं जिन पर अगर अन्याय होता है, तो वे चुपचाप नहीं रहते, और न ही चिल्लाते, न ही बड़बड़ाते हैं बल्कि अन्याय किसने किया? अन्याय क्यों हुआ? किन परिस्थितियों में हुआ? इत्यादि "क्यों" के प्रश्नों का विवेकपूर्ण समाधान खोज इन सभी परिस्थितियों को ही बदल देने का प्रयास करते हैं। डॉ. अंबेडकर भी इसी प्रकार के गुणों से सर्व–सम्पन्न व्यक्ति थे। तभी तो एक सामान्य अछूत परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी वे इतने सक्षम हो सके थे कि सदियों से भारतीय समाज में चली आ रही अन्याय की क्रूर व्यवस्था को अकेले ही समूल नष्ट करने का बीड़ा उठाया था।

डॉ. अंबेडकर की स्थिति भी अत्यंत प्रतिष्ठित व्यक्तियों वाली थी। इस महानता को उन्होंने अपने कठोर परिश्रम, लगन, क्षमता तथा स्वाभिमान के बल पर प्राप्त किया था। क्योंकि आज तक लाखों व करोड़ों अछूत–बच्चे जन्म लेते आए थे परन्तु हिन्दू समाज की वर्णव्यवस्था के चलते उन सबका भविष्य घोर अंधकार में समाता चला आ रहा था। लेकिन भीमराव ऐसा बालक बना जिसने न केवल अपना, अपितु अपने सम्पूर्ण समाज को सदियों से चली आ रही हिन्दू समाज की छुआछूत की भावना से मुक्ति दिलवाई। इस प्रकार डॉ. अंबेडकर की यह महानता उन्हें जन्म से न मिलकर कर्म वाली धारणा पर आधारित थी।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का जन्म उन परिस्थितियों में हुआ था, जब एक तरफ यूरोप में स्वतंत्रता व समानता का विचार फल–फूल रहा था। और इधर भारतीय समाज में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विस्तारवादी पंजे में जकड़े हुए लोगों में स्वतंत्रता और समानता की भावना जागृत होगी आरम्भ हो गई थी। उस समय विश्व की जनसंख्या एक बड़ा भाग "नीग्रो व हब्शी" के रूप में मानवी घृणा का शिकार था। तो दूसरी तरफ भारत में भी वर्णभेद व जाति–पाति की दीवारे मजबूत थी। यहाँ समाज के अपने ही सधर्मी स्वदेशी बंधुओं के प्रति घृणा की भावना तेज हो रही थी। जिससे देश में एक वर्ग विशेष का जीवन–यापन दुर्लभ हो गया था।

संसार को ज्ञान बांटने वाला भारत आज अपने ही देश में गहरे अंधकार में सोया हुआ था। क्योंकि उस समय जो हमारे देश का सामाजिक ढाँचा था, उसमें इतनी अधिक विषमता थी कि कुछ मनुष्यों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। अनुसूचित जाति के लोगों को जानवरों से भी बदतर हाल में अपना जीवन गुजारना पड़ता था। सवर्ण लोग कुत्ते और बिल्लियों को तो अपने पास बैठाते थे लेकिन इन इन्सानों को अपने पास नहीं बैठाते थे और नही उनका स्पर्श स्वीकार करते थे। समाज

का सारा वातावरण इसी प्रकार की घृणा की भावनाओं से भरा पड़ा था।

इस प्रकार की अमानवीय स्थिति को देखकर अनेक चिन्तक व समाज सुधारक समय–समय पर इन समस्याओं को सुलझाने के लिए आगे आए। परन्तु इन सब में डॉ. अंबेडकर की विचार शैली व स्थिति दूसरों से पूर्णतयः भिन्न थी। क्योंकि इनसे पूर्व जो भी प्रयास हुए थे, वे केवल अछूतों को सहानुभूति देने तक ही सीमित रहे, अथवा उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए ही प्रयत्नशील थे। इसका कारण यह था कि ये अधिकांश सुधारक भेदभावों के शिकार नहीं हुए थे और इस वर्ग से संबंधित भी नहीं थे। परन्तु डॉ. अंबेडकर ने सवर्णों द्वारा इस अपमान को पग–पग पर देखा व महसूस किया था। क्योंकि उनकी स्थिति तो एक भुक्त–भोगी की थी। इसी कारण सामाजिक न्याय के प्रति वे जीवन भर अत्यधिक समर्पित रहे। डॉ. अंबेडकर ने अपने गहन अध्ययन व विश्लेषण के आधार पर यह समझ लिया था कि दलितों व शोषितों को सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ऐसी सहानुभूति तो उन्हें अनेक बार दिखाई गई, पर इससे दलितों का कोई उद्धार नहीं हो सकता है इसी प्रकार –

'जात–पात पूछे नहीं कोई...
हरि की भजे जो हरि का कोई

इत्यादि कहावतों का भी समाज पर कोई विशेष असर नहीं हो रहा था। ऐसे कठिन समय में डॉ. अंबेडकर वह सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने "सामाजिक न्याय" का पहली बार तर्कसंगत व व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात सामाजिक न्याय की माँग भारतीय समाज के सामने प्रकट की। जिसका आधार था समता का विश्वमान्य सिद्धान्त।

डॉ. अंबेडकर के सम्पूर्ण जीवन और उनके चिन्तन का परम ध्येय केवल सामाजिक न्याय की प्राप्ति ही था। इसके लिए वे कभी भी, किसी भी प्रकार का ऐसा समझौता करने को तैयार न थे जिससे सामाजिक न्याय के संकल्प पर आँच आती हो। क्योंकि अनेक अवसरों पर उन्हें प्रलोभन देकर सामाजिक न्याय के मार्ग से गुमराह करने का प्रयत्न भी किया गया था। और इसी प्रकार अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए न ही उन्होंने कभी परिस्थितियों से समझौता किया चाहे वे किसी भी संकट अथवा विपत्ति में क्यों न रहे हो। इसका एक छोटा सा उदाहरण संविधान सभा में देखा जा सकता है जब सभी मान्य विशारद राजनीतिक विषयों के प्रश्नों के समाधान में उलझे हुए थे, वहीं डॉ. अंबेडकर का ध्यान केवल "सामाजिक न्याय" पर ही मुख्य रूप से केन्द्रित था। वहाँ इसी संदर्भ में उन्होंने कहा कि–

> "हमारी स्वतंत्रता का अर्थ तब तक पूर्ण नहीं होगा, जब तक हम भूखमरी, वस्त्रों व आवास की समस्या के समाधान के साथ–साथ अवसर की समानता के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते। और जब हम इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो जाएगें, उस समय हमारे सामाजिक न्याय का लक्ष्य व संकल्प भी सार्थक हो जाएगा।"[10]

सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु डॉ. अंबेडकर ने तटस्थ व व्यवहारिक दृष्टिकोण का परिचय दिया। क्योंकि वे भली–भाँति देख चुके थे कि न्याय के इस महान संघर्ष में जाति व वर्ण व्यवस्था सबसे बड़ी रूकावट है। अतः सामाजिक न्याय का लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक समाज के सभी अंगों में परस्पर सौहार्द और समानता की भावना पैदा न हो जाए। और इस कार्य के लिए आवश्यक है कि वर्ण व्यवस्था के साथ–साथ जाति–पाति की इस अमानवीय प्रथा को भी समाप्त किया जाए। क्योंकि सामाजिक विषमता को सबसे बड़ी खाई यह छुआछूत की हीन भावना ही है जिससे सभी प्रकारों के न्यायों के हनन का मार्ग प्रशस्त होता है।

इन्हीं सब सामाजिक विषमताओं के कारण देश आज सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त है। आज हम सब एक भारत माता के पुत्र होकर भी आपस में एक दूसरे के हाथ का छुआ खाना व पानी ग्रहण नहीं करते हैं। एक दूसरे के शरीर तक को छूने में घृणा महसूस करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप देश की राष्ट्रीय एकता दिन पर दिन जर्जर होती जा रही है।

> "आज हमारे समाज में "सामाजिक न्याय" का इससे अधिक हनन और क्या होगा कि हमारे कुँओं व तलाबों पर पशु तो आकर बड़े आराम से पानी पी सकते हैं। अन्य धर्म के स्वावलम्बी बे हिचक हमारे मंदिरों में आकर पूजा याचना कर सकते हैं परन्तु राम व कृष्ण को ही पूजने वाले हमारे दलित भाई इस तरफ मुंह व नज़र तक उठाने का साहस नहीं कर सकते हैं। छुआछूत की इस भयंकर महामारी ने सदियों से सजीव मानवों को आज तक निर्जीव बनाए रखा है।"[11]

सामाजिक न्याय के साथ इस विश्वासघात में हमारे हिन्दू धर्मशास्त्र भी पीछे नहीं रहे हैं। अतः इसके गहन अध्ययन के पश्चात डॉ. अंबेडकर ने पाया कि मनु की व्यवस्थाएँ नहीं वरन् संवैधानिक संरक्षणों के द्वारा ही अछूत एक स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

भारत के भावी स्वरूप के विषय में डॉ. अंबेडकर काफी दूरदर्शी थे तभी तो वे सदैव इस के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दू पर गंभीरतापूर्वक विचार करते थे। क्योंकि वे अपने गहन अध्ययन के आधर पर पूर्ण रूप से संतुष्ट हो गए थे कि जाति, सम्प्रदाय या परिवार में गौरव भाव लाने में उसके पूर्वजों का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। परन्तु समाज की अछूत मानी जाने वाली जातियाँ, जिन्हें कि गौरव व न्याय का ज्ञान ही नहीं है, वे इस परम्परागत वर्णवादी व्यवस्था के कारण अपने को पूर्वजन्मों के कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान में भी सेवक की भूमिका के लिए बाध्य है। ये दलित हजारों वर्षों से गुलाम हैं और गुलामी की यह परम्परा इन लोगों को विरासत में मिलती चली आ रही है और ये लोग अन्जाने में गुलामी के इस बोझ को ढोए जा रहे हैं। इस का सर्वप्रथम ज्ञान अछूतों को डॉ. अंबेडकर ने ही करवाया।

डॉ. अंबेडकर यह देख चुके थे कि पूर्वजन्म की समर्थक यह ब्राह्मण व वर्णवादी व्यवस्था के चलते इनका उद्धार हो पाना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है और इस प्रकार अगर भारत स्वतंत्र भी हो जाता है तो भी ये जातियाँ सदैव परतंत्र ही रहेगी। अतः इन लोगों में सामाजिक न्याय की रक्षा के प्रति जागरूकता लाने के लिए किन साधनों को अपनाया जाए जिससे इनका भी स्वतंत्र व निजी अस्तित्व कायम हो सके? तथा समाज में ये लोग भी स्वाभिमान पूर्वक जीवन यापन कर सकें। इस प्रश्न को डॉ. अंबेडकर ने दलित समाज के उत्थान का केन्द्रीय प्रश्न माना।

डॉ. अंबेडकर को सामाजिक न्याय का हनन करने वाली इस व्यवस्था से यह आशंका भी उत्पन्न होने लगी थी कि कहीं ऐसा न हो कि जब भावी लोकतंत्र के गठन की प्रक्रिया के लिए मतदान हो तो उस समय सवर्ण अछूतों के इस मताधिकार संबंधी अधिकारों का प्रयोग करने की अनुमति ही न दे अर्थात् अछूत व दलितों की उपस्थिति के कारण कहीं मतदान केन्द्रों को अपवित्र मानकर उनका बहिष्कार ही न कर दें। ऐसे समय में लोकतंत्र का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। इस प्रकार के अधिकारों के हनन की संभावना से कदापि भी इंकार नहीं किया जा सकता था। सामाजिक न्याय के अपने उद्देश्यों के प्रति दृढ़ रहते हुए डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में चेतावनी देते हुए कहा था कि–

> "भारत में राजनैतिक समानता की व्यवस्थाएँ होने जा रही है परन्तु अभी सामाजिक व आर्थिक विषमताएँ शेष हैं और यदि

> समय रहते इन विसंगतियों को शीघ्रतिशीघ्र दूर नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब वे लोग जो सामाजिक न्याय से सताए हुए हैं इस राजनैतिक लोकतंत्र की धज्जियाँ उड़ा देंगे।"[12]

सामाजिक न्याय के इस संघर्ष की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार की डॉ. अंबेडकर ने जब उन्होंने इन दलित लोगों को समता का अर्थ समझाया। और यह अहसास कराया कि न्याय व समानता व्यक्ति के जीवन के लिए कितनी अमूल्य हैं। इसी संदर्भ में यह भी एक कटु सत्य है कि अगर डॉ. अंबेडकर का जन्म न हुआ होता तो शायद दलित वर्ग के साथ–साथ अन्य शोषित वर्ग आज तक यह भी न समझे होते कि जीना किसे कहते हैं? सम्मानपूर्वक जीना क्या होता है? शिक्षा क्या होती है? और स्वतंत्रता और न्याय क्या होता है? इत्यादि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो कि सामाजिक न्याय शब्द को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं। तथा ये व्यक्ति के गौरवमयी जीवन के लिए आधार स्तम्भ है; जिनका डॉ. अंबेडकर ने सामाजिक न्याय के साथ समन्वय करवाया। क्योंकि इसी से जुड़ा था करोड़ो दलितों का भाग्य व उत्थान और उनके भाग्य व उत्थान से जुड़ा था भारतीय लोकतंत्र का सामाजिक व आर्थिक स्वरूप।

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए डॉ. अंबेडकर इसकी जड़ हिन्दू धर्मशास्त्रों की गहराई तक गए। और अपने गहन अध्ययन के आधार पर इसकी इतने तर्कपूर्ण ढ़ंग से खोज की कि बड़े–बड़े विद्वान भी इनकी बौद्धिक क्षमता का लोहा मान गए। इसके उपरांत उन्होंने समाज को सशक्त नेतृत्व व दिशा प्रदान की। इसके बाद 25 दिसम्बर, 1927 का दिन भारतीय इतिहास में लाल दिवस के रूप में माना जा सकता है। जब इस दिन उन्होंने मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से फूँकने के साथ ही सामाजिक न्याय के युग का प्रारम्भ करवाया। और इसी कड़ी में एक अछूत के रूप में सार्वजनिक तालाबों से पानी पीकर डॉ. अंबेडकर ने इसका मार्ग सभी के लिए खोल दिया।

संस्थागत प्रयासों के अन्तर्गत डॉ. अंबेडकर ने दलितों के सहयोग से "प्युपिल्स एजूकेशन सोसायटी" के माध्यम से स्कूल व कॉलेजों का शुभारम्भ किया। परन्तु सामाजिक न्याय के लिए उनका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य अछूतों की समस्या का राजनीतिकरण था। इसी को सशक्त बनाने के लिए उन्होंने "शैडयूल कॉस्ट फेडरेशन" की स्थापना की, जिसका नाम आगे चलकर 13 अक्टूबर, 1956 में रिपब्लिकन पार्टी रखा गया। इन संस्थाओं के परिणामस्वरूप दलितों में बौद्धिक चेतना का प्रचार होना आरम्भ हुआ, जिससे सामाजिक न्याय पर चिन्तन और मनन का कार्य तेज हुआ। इसी सामाजिक न्याय के संदर्भ में उन्होंने पुनः कहा कि–

> "अपने राजनीतिक लोकतंत्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप देना होगा, क्योंकि राजनीतिक लोकतंत्र सदैव नहीं बना रहता यदि उसका आधार सामाजिक लोकतंत्र न हो तो..."[13]

डॉ. अंबेडकर ने आजीवन दलितों व शोषितों के हितों के लिए संघर्ष किया। जिससे सामाजिक न्याय का लक्ष्य सहज भाव से प्राप्त किया जा सके। वैसे उनके लिए राष्ट्रीय मूल्य भी कम न थे। इसको भी उन्होंने अपने कार्यक्रमों में समान रूप से प्राथमिकता दी। वे सामाजिक न्याय की प्राप्ति के साथ ही राष्ट्रीय एकता को और अधिक मजबूत करना चाहते थे। दलितों को समान अधिकार दिलाने के लिए तथा विषमता की गहरी खाई को पाटने के लिए "जेहाद" खड़ा किया तो केवल इसलिए नहीं कि वे दलित व अछूत समाज की उपज थे जैसे उनके आलोचकों की उनके प्रति धरणा है।

परन्तु यह वास्तविकता नहीं है क्योंकि डॉ. अंबेडकर के लिए पहले ही कई बार कहा जा चुका है कि सामाजिक न्याय ही उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न था; इससे अधिक और कम कुछ नहीं। और इस न्याय के प्रति उनका दृष्टिकोण इतना व्यापक था कि वे न तो शूद्र की सीमाओं से बंधे थे और नही किसी तरह के पूर्वाग्रह से ग्रस्त थे; उनके लिए तो न्याय ही प्रथम व अंतिम लक्ष्य एवं उद्देश्य था। इसका एक अन्य उदाहरण उनका तिलक को लिखा गया वह पत्र है जिसमें उन्होंने लिखा था कि–

> "यदि आप अछूतों के समाज में पैदा हुए होते तो तो कदापि नहीं कहते कि स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है बल्कि आप कहते कि भारत में छुआछूत को मिटाना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।"[14]

सब मिलाकर सामाजिक न्याय को और अध्कि सार्थक व प्रभावशाली स्वरूप देने के लिए डॉ. अंबेडकर की मान्यता थी कि– सब मनुष्य समान है और सब को सम्मानपूर्वक जीवन यापन का पूरा–पूरा अधिकार है। तथा समाज की तरफ से प्रत्येक व्यक्ति को आगे बढ़ने व प्रगति करने का समान अवसर मिलना चाहिए। यहाँ यह स्वयं ही स्पष्ट है कि उनके विचारों एवं कृत्यों के पीछे मानवता की प्रबल भावना निहित थी। वे किसी भी तरह के शोषण, उत्पीड़न अथवा एकाधिकार के कठोर विरोधी थे। उनका आग्रह था कि सब को न्याय मिले, किसी के साथ कोई भेदभाव न हो, सारा समाज परस्पर मैत्री भाव से रहे तथा सबको स्वेच्छानुसार व्यापार करने व जीविका उपार्जन की स्वतंत्रता प्राप्त हो। भारतीय संविधान की रचना के दौरान भी उन्होंने इस मानवता की भावना को सर्वप्रथम उद्देश्य माना था।

डॉ. अंबेडकर के सामाजिक व राजनीतिक दर्शन का मूल प्रतिपाद्य भी यही था कि मनुष्य सर्वोपरि है तथा दुनिया में मानवता व मनुष्य से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। धर्म, सम्प्रदाय आदि सब साधन–मात्र हैं जो मनुष्य के जीवन को लक्ष्य की तरफ ले जाते हैं, डॉ. अंबेडकर का विचार था कि इन साधनों को कभी भी बदला जा सकता है असली चीज है लोकहित और इसे ही जीवन का साध्य मानना चाहिए। साध्य की पवित्रता साधन की पवित्रता पर निर्भर करती है। यही कारण था कि डॉ. अंबेडकर दलितों के हितों के लिए लड़े, लेकिन किसी के हितों पर चोट करके अर्थात दूसरों के साथ अन्याय करके वे दलितों को कदापि भी सामाजिक न्याय दिलाना उनका उद्देश्य नहीं रहा। इसी प्रकार किसी को नीचे गिराकर भी स्वयं को ऊपर उठाना उनका उद्देश्य नहीं रहा। डॉ. अंबेडकर सामाजिक न्याय के अन्तर्गत मानवता व अहिंसा की उपासना करते थे, तभी तो उन्होंने कभी भी अपने आन्दोलनों में हिंसा को लेशमात्र भी स्थान नहीं दिया। यही कारण था कि हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था से पूर्णतः त्रस्त होकर तथा उसमें सुधार की कोई गुंजाइश न देखकर जब उन्होंने हिन्दू धर्म का परित्याग भी किया तो उस समय उन्होंने अपने अनुयायियों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दिलवाई जो सदैव से ही अहिंसा व बन्धुत्व का प्रतीक रहा है।

निष्कर्ष

सामाजिक न्याय शब्द के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन के उपरांत हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इसके विश्लेषण का कार्य पूरा हो चुका है। अपितु इस संकल्पना का यह केवल सूक्ष्म अध्ययन मात्र है क्योंकि "सामाजिक न्याय" शब्द अपने आप में विस्तृत गहराई व व्यापकता लिए हुए है अतः इसको स्पष्ट करना किसी चुनौती से कम नहीं है। इसके अतिरिक्त इसमें विरोधाभाषो की भी कमी नहीं है परन्तु डॉ. अंबेडकर ने इसे एक संपूर्ण संकल्पना व दर्शन का रूप दिया। जिससे समाजशास्त्र कोष में यह एक क्रान्तिकारी अवधारणा तथा आन्दोलन के रूप में उदित हुआ।

सामाजिक न्याय एक व्यापक विषय है इस पर जितना भी कहा जाए या लिखा जाए कम है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि इस पर और भी गंभीर चिन्तन की आवश्यकता है। हमारा

समाज किसी एक व्यक्ति की ही मान्यताओं पर आधारित नहीं है। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए समाज में विभिन्न विचारधाराओं को एक साथ लेकर चलने की क्षमता होनी चाहिए। यदि समाज का कोई एक अंग कमजोर है या बीमार है तो इसे स्वस्थ करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए न कि उसे काट देना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा ध्येय समाज के लिए न्याय प्राप्त करने का है न कि उसे विभाजित या अपंग करने का।

सामाजिक न्याय के संदर्भ में डेविड मिलर ने अपने एक अनुच्छेद में लिखा है कि "सामाजिक न्याय की अवधारणा का इतिहास सामाजिक समस्याओं के समाधान का प्रारूप प्रस्तुत करता है। जिससे धन का उचित वितरण तथा समाज में व्यक्तियों के लिए उचित प्रतिष्ठा से संबंधित समस्याओं की व्याख्या है। मिलर के इस कथन के साथ अनजाने में ही हमारा "सर्व जन हिताय" का कथन जुड़ा प्रतीत होता है।

एक सामाजिक क्रान्तिकारी के रूप में डॉ. अंबेडकर का नाम सदा इतिहास में सुरक्षित रहेगा। क्योंकि हिन्दू जाति–पाति के पूरे इतिहास में उदारता के जितने भी आन्दोलन हुए उन आंदोलनों की कड़ी में डॉ. अंबेडकर सबसे प्रखर महापुरुष थे जिन्होंने सामाजिक न्याय के पथ पर चलते हुए जाति नामक संस्था का 1916 में पहली बार वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। इस विषय को और भी अधिक जनप्रिय बनाने के लिए 1936 में उन्होंने लाहौर के जात–पात तोड़क मंडल के आमंत्रण पर आर्य समाज के अध्यक्षीय भाषण के रूप में एक सर्वांगपूर्ण निबंध तैयार किया। और जब यह निबंध "जाति प्रथा का उन्मूलन" नामक शीर्षक के अन्तर्गत एक पुस्तक के रूप में छपा तो इससे हिन्दू समाज की खोखली जड़ें हिल गई। इसके विरोध में महात्मा गाँधी को डॉ. अंबेडकर की आलोचना तक करनी पड़ी। यह पुस्तक भारतीय इतिहास में सामाजिक क्रांति लाने वाली एक प्रामाणिक दस्तावेज सिद्ध हुई। जिसने दलितों के लिए "सामाजिक न्याय" के लम्बे व कष्टदायक मार्ग को अति लघु व सरल बना दिया।

अतः इतिहास में पहली बार कथित अस्पृश्य अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए उठे। यह एक आंतरिक विद्रोह था, बाहर से थोपा गया सुधार नहीं। यह विद्रोह भी डॉ. अंबेडकर के अंदर इसलिए उपजा कि वे जीवनपर्यन्त सवर्णों के अत्याचारों का शिकार होते रहे। जिसके कारण उन्हें आभास हुआ कि जब उनके जितना शिक्षित व्यक्ति भी इस अन्याय की ज्वाला से भस्म किया जा सकता है तो उन करोड़ों व्यक्तियों की क्या स्थिति होगी? जो "न्याय" व "समानता" का अर्थ भी नहीं जानते। तब उन्होंने यह निश्चय किया कि वे जीवन भर दलितों अर्थात् अपने वर्ग के लोगों को सामाजिक न्याय व समानता प्राप्त करवाने का संघर्ष करेंगे।

इसके लिए उन्होंने प्रजातांत्रिक व संवैधानिक साधनों में विश्वास व्यक्त किया। वे कहते थे कि... "स्वतंत्रता, समानता और भ्रात्वता मेरा दर्शन है।" उनके इन तीनों आधार स्तम्भों के लिए आरोप लगाया जाता है कि यह उन्होंने प्रैस क्रान्ति से ग्रहण किया था। परन्तु वास्तविकता यह है कि उनके ऊपर बौद्ध धर्म का प्रभाव था। क्योंकि उन्होंने स्वीकार किया कि "स्वतंत्रता तथा समानता की सुरक्षा तभी संभव हो सकती है जब समाज के सभी लोगों में भाईचारे की भावना हो।" [15] उन्होंने पुराने हिन्दू धर्म शास्त्रों की कठोर आलोचना की और लोगों को सचेत किया कि हिन्दू धर्म में रहते हुए उनको सामाजिक न्याय मिलना असंभव है तब उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा न केवल स्वयं ली अपितु लाखों अनुयायियों की दिशा भी उधर ही मोड़ दी। इसी संदर्भ में कार्ल मार्क्स के विश्व प्रसिद्ध कथन के समानान्तर उन्होंने कहा कि "तुम्हारे पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है सिवाय तुम्हारे बन्धनों के परन्तु पाने के लिए सब कुछ है केवल मात्र हिन्दू धर्म के परिवर्तन से।[16]

सामाजिक न्याय के इतिहास में 29 अगस्त, 1947 का दिन डॉ. अंबेडकर के लिए एक ऐतिहासिक दिन था जब भारत की संविधान सभा ने नए संविधान की प्रारूप समिति का उन्हें अध्यक्ष सुना। "सामाजिक न्याय" को स्थापित करवाने के लिए डॉ. अंबेडकर सदैव से ही उत्सुक थे कि कब उन्हें अवसर मिले और वे उसका संवैधानिक समाधान अथवा उपबंध प्रस्तुत कर सकें। इस तरह एक अछूत जिसे बचपन में गाड़ियों से बाहर फेंका गया और स्कूलों से बहिष्कृत रखा गया, जिसे अपने युवावस्था में घृणित महार के रूप में होटलों, सेलूनों तथा मंदिरों से निकाला गया हो जिसका एक उच्च शिक्षित प्रोफेसर के रूप में अपमान किया गया हो, जिसे ब्रिटिश सरकार की कठपुतली तथा राजनीतिक दैत्य की संज्ञा दी गई हो, अब स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री बन कर करोड़ों लोगों को "सामाजिक न्याय" दिलाने के लिए संविधान सभा में जा रहे थे।

"सामाजिक न्याय" के लिए डॉ. अंबेडकर कितने अधिक कृत संकल्पित थे इसके लिए उन्होंने जो स्मृति पत्र लिखा था वह इस प्रकार था। जिसमें डॉ. अंबेडकर ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा राज्य के कर्तव्यों के विषय में एक 22 सूत्री स्मरण पत्र लिखा था। इसे "मैगनाकार्टा ऑफ द हैव नाट्स" कहा जाता है। इस पत्र की प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा था कि स्वतंत्र भारत देशी रियासतों को साथ लेकर बने और उसका नाम "यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ इण्डिया" पड़े। इसमें नागरिकों को जीवन, स्वाधीनता, अभिव्यक्ति और धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी हो। जिससे दलित वर्ग को विशेष अवसर प्रदान कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषमता समाप्त की जाए। [17] ताकि सदियों से यह शोषित, उपेक्षित व उत्पीड़ित वर्ग अभाव और भय से मुक्ति पा सके। इसके लिए जरूरी है कि विकास एवं 'सामाजिक न्याय' की शुरूआत गरीब के आंगन से हो और वही से ऊपर उठे। जिससे दलित शोषित, उत्पीड़ित जनता को इस सकून का अहसास पहले हो, बाद में किसी अन्य हो। [18]

इस अध्ययन के उपरांत यह स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि आज जिस "सामाजिक न्याय" के लिए हमारे चारों तरफ तर्क–वितर्क व संघर्ष चल रहा है उसका डॉ. अंबेडकर के राजनैतिक, सामाजिक व बौद्धिक चिन्तन में लेशमात्र भी स्थान नहीं है। क्योंकि आज सामाजिक न्याय के संकल्प को सरकारी सेवाओं में आरक्षण के रूप में देखा व जोड़ा जा रहा है। और इस तरह सामाजिक न्याय का वह विस्तृत कार्यक्षेत्र आज केवल 'आरक्षण' तक ही सीमित होकर रह गया है जिसके फलस्वरूप समाज के आधे भाग द्वारा इसका समर्थन और शेष आधे बचे समाज द्वारा इसका विरोध का दृष्टिकोण केवल वहीं तक सीमित व संकुचित हो गया है अर्थात् आज का 'सामाजिक न्याय' केवल और केवल 'आरक्षण' का पर्यायवाची बन चुका है। और यही कारण भी है कि सामाजिक न्याय का यह आदर्श इस राजनैतिक संघर्ष में अत्याधिक दूषित हो गया है।

जहाँ तक सामाजिक न्याय के लिए आरक्षण का प्रश्न है वहाँ आज अंबेडकर के आरक्षण संबंधी दृष्टिकोण की भी दोषपूर्ण व्याख्या की जा रही है। आरक्षण के सम्बन्ध में गांधी, नेहरू और अंबेडकर ने सर्वसम्मति से इसका समर्थन किया था। और इसका उद्देश्य केवल आर्थिक उन्नति ही नहीं निर्धारित किया गया था, बल्कि इसके मूल में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़ी जातियों, शोषितों इत्यादि के सामाजिक उत्थान का लक्ष्य भी रखा गया था। डॉ. अंबेडकर ने आरक्षण की समय सीमा केवल दस वर्ष के लिए निर्धारित की थी उनके इस प्रस्ताव का अन्य सभा विशारदों ने भी पूर्ण समर्थन किया था। क्योंकि इन सब का विचार था कि इस समय अवधि में आरक्षण प्राप्त जातियों की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्तर में इस सीमा तक सुधार कर लिया जाएगा कि भविष्य में इसकी और अधिक आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

इसी प्रकार 27 दिसम्बर, 1955 को डॉ. अंबेडकर ने राजनैतिक आरक्षण का भी प्रतिवाद किया था तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए विधानसभाओं और संसद में भी इस प्रकार

के आरक्षणों का विरोध किया था। अर्थात् अंबेडकर इस आरक्षण को एक ऐसी 'जौंक' नहीं बनने देना चाहते थे जो लम्बे समय तक साथ चिपकी रहे, अपितु इस को वे उत्थान का एक अल्पकालीन साधन मानते थे। अगर ऐसा न होता तो वे आरक्षण का लाभ अपने हितों के अनुसार बीस, तीस अथवा पचास वर्ष तक की दीर्घकालीन अवधि के लिए स्वयं लिख सकते थे जिस पर किसी का कोई विरोध नहीं हो सकता था परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, क्योंकि वे हृदय से चाहते थे कि इस वर्ग के लोग थोड़ा सहारा मिल जाने के उपरांत अपना विकास स्वयं करें, न कि आरक्षण की बैसाखियों पर आजीवन निर्भर रहे।

परन्तु सन् 1950 से लेकर 20वीं सदी के अंत तक इसको चार बार आगे बढ़ाने का औचित्य केवल राजनैतिक स्वार्थ ही प्रतीत होता है। क्योंकि किसी भी सरकार ने इस को समाप्त करने का प्रयास ईमानदारी से नहीं किया। इसको समाप्त करने के लिए आवश्यक है कि आरक्षण पर निर्भर लोगों का पूर्ण उत्थान किया जाए, जो कि सभी सरकारों के लिए एक कठिन कार्य था। अतः इस की उपेक्षा करते हुए आरक्षण को हर बार एक दशक के लिए आगे बढ़ा दिया जाता है क्योंकि कमज़ोर वर्गों के पूर्ण उत्थान की अपेक्षा यह सरल है कि एक विधेयक संसद से पास करवा दिया जाये, और इस प्रकार दलितों के सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम को एक दशक तक आगे खिसका दिया जाए।

अतः अभी हमारे पास समय शेष है कि हम अपने सामाजिक न्याय सम्बन्धी मूल प्रतिपाद्य में व्यापक परिवर्तन लाए तथा इसके कार्य क्षेत्रा को मात्र आरक्षण से न जोड़कर इसको व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन के साथ जोड़ें। इसके लिए आवश्यक है कि डॉ. अम्बेडकर के तटस्थ तथा मौलिक विचारों व चिन्तनधारा पर व्यवहारिक अनुसरण एवम् आचरण आरम्भ करें। और वास्तविकता भी यही है कि 'सामाजिक न्याय' का मूल अर्थ डॉ. अंबेडकर वाला सर्वव्यापक दृष्टिकोण ही मान्य है। यही कारण भी है कि आज उनके लाखों व करोड़ों अनुयायी हैं जो कि अंबेडकर के दृष्टिकोण में पूर्ण आस्था व्यक्त करते हैं और दूसरी तरफ व्यक्ति आज के नेताओं का नाम लेना तक पसंद नहीं करते हैं।

इसी तरह अनेक विद्वानों तथा समाजशास्त्रियों के साथ–साथ समाज सेवियों ने भी 'सामाजिक न्याय' को अलग–अलग दृष्टिकोणों से इसका अध्ययन व विश्लेषण किया है। यहाँ पर कोई विद्वान इसके आर्थिक पक्ष पर, कोई राजनीतिक तर्को के आधार पर सामाजिक न्याय दिलवाने के लिए प्रयत्नशील है। डॉ. अंबेडकर ने इसके राजनीतिक व आर्थिक दोनों ही पक्षों की सहायता से सामाजिक न्याय को परिभाषित किया है। परन्तु कुछ भी हो सभी विद्वान एक मत से अवश्य ही सहमत हैं कि समाज के पिछड़े व शोषितों के साथ कुछ इस प्रकार से व्यवहार किया जाना चाहिए कि उन्हें सामाजिक अन्याय का शिकार न बनना पड़े। अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता का मिला–जुला रूप 'सामाजिक न्याय' है जो कि डॉ. अंबेडकर की विचार धारा की मुख्य उपलब्धि कही जा सकती है।

संदर्भ

1. Bharti KS. Foundation of Ambedkar Thought, New Delhi, 1990, 5
2. Dhananjay, Keer, Dr. Ambedkar - Life and Mission 1962, 229.
3. Ibid, 88.
4. Dr. Ambedkar, States and Minorities, Bombay, 1947, 39-40.
5. Ibid, 87.
6. Dhananjay, Keer. Dr. Ambedkar - Life and Mission 1962, 106.
7. Ayyar VK, Krishna, Dr. Ambedkar. and the Dalit Future, Delhi, 1990, 5.
8. महार पत्रिका के संभार से
9. गाबा, ओमप्रकाश, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, दिल्ली, 1991] पृ- 230&31
10. संसदीय बहस अंक, भाग–6, पृ. 739
11. Ambedkar, Annihilation of Caste, 1987, p.145
12. Ibid, 145.
13. संसदीय बहस अंक, भाग–2, पृ. 979
14. Dhananjay, Keer, Dr. Ambedkar - Life and Mission 1962, 81.
15. संसदीय बहस अंक, भाग–2, पृ. 979
16. संसदीय बहस अंक, भाग–2, पृ. 979
17. संसदीय बहस अंक–7, पृ. 666
18. Dr. Baba Saheb Amebdkar, Writing and Speech, 2, 505.